



International Research Journal of Humanities, Language and  
Literature ISSN: (2394-1642)

Impact Factor 6.972 Volume 10, Issue 11, Nov 2023

Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)  
Website-www.aarf.asia, Email : editor@aarf.asia ,  
editoraarf@gmail.com

---

## आचार्य चरक के आयुर्वेदीय चिकित्सा सिद्धान्त

श्री पूरण मल मीना सह आचार्य इतिहास  
राजेश पायलट राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,  
लालसोट (दौसा)

**शोध सारांश :-** आयुर्वेद सहित भारत की अधिकांश पारंपरिक चिकित्सा प्रणालियों की जड़ें लोक-चिकित्सा में हैं। हालाँकि आयुर्वेद अन्य प्रणालियों से अलग है, जो परिभाषित वैचारिक रूपरेखा है। यह स्वास्थ्य और रोगों के प्रति एक एकीकृत दृष्टिकोण का समर्थन करने वाली प्रथम चिकित्सा प्रणालियों में से एक थी। चरक के अनुसार आयुर्वेद का मौलिक सिद्धान्त त्रिदोष है जिस पर उसके सभी अंग आधारित है। इसके अतिरिक्त, शरीरक्रिया तथा द्रव्यगुण के संबन्ध में भी आयुर्वेद की मौलिक विचारधारा है। ये सब पुनः पंचभूतवाद पर अवलंबित हैं। वेद सभी ज्ञान का आदिम्रोत है अतः इन सिद्धान्तों का मूल भी वहीं प्रतिष्ठित है। ऋग्वेद में इन सिद्धान्तों का अत्यन्त सूक्ष्म रूप से उल्लेख है। कालक्रम से आयुर्वेद के सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि का भी विकास हुआ जिसका निदर्शन अथर्ववेद में हुआ है।

चरक में सर्वप्रथम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए आरोग्य का होना आवश्यक माना है। अतः इस दृष्टिकोण से रोग का निराकरण करना एक श्रेष्ठ धर्म माना है। लेकिन इस क्रम में वैद्य को अर्थ या यश भी प्राप्त होता है। अतः इसे मात्र धन का ही साधन न मान लिया जाय, इस दृष्टिकोण से वैद्य के कर्तव्यों का निर्देश किया है कि वह प्राणियों पर दया का विचार करते हुए रोगों के निराकरण के धर्म का निर्वाह करे। धन के लिए इस चिकित्सा को व्यवसाय के रूप में मान्यता नहीं दी।

**संकेताक्षर :-** द्रव्यगुण, आरोग्य, शालाक्य चिकित्सा, त्रिदोष, चतुष्पाद, त्रिसूत्र, षडुपक्रम, प्राणायतन, उदकधरा, रक्तधरा पुरिष, सिरा, मेदोवह व मज्जावह

**प्रस्तावना :-** चरक संहिता में अष्टांगों के नाम का निर्देश किया गया है। प्रारंभिक ज्ञान और उपयोगिता के आधार पर अष्टांग विवेचन अवश्य यथा स्थान किया है। यथा –

---

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)

A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

**काय चिकित्सा** – सम्पूर्ण चिकित्सा स्थान, कल्प स्थान और सिद्धि स्थान में काय-चिकित्सा का विस्तृत विवरण है।

**कौमार भृत्य**– शारीर स्थान आठवां अध्याय।

**शालाक्य चिकित्सा**– जहां पर चिकित्सा कार्य में शलाका का प्रयोग हो वह शालाक्य है। इस दृष्टिकोण से ऊर्ध्वांग चिकित्सा में शलाका से होने वाले शल्य कर्म आदि का भी समावेश हो जाता है। लेकिन चरक में ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों की चिकित्सा का निर्देश अवश्य है पर वह काय-चिकित्सा परक ही है। शल्यपरक नहीं। यथा – त्रिमर्मीय अध्याय में नासारोग, कर्ण रोग, मुख, नेत्र और शिरोरोग आदि का संक्षेप में निदान तथा चिकित्सा का वर्णन किया गया है।<sup>1</sup> चिकित्सा का वर्णन काय चिकित्सा परक है। यहां ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों का जो वर्णन किया गया है, वह एकदेशीय वर्णन है, जिसका उद्देश्य यह है कि तद्विषयक ज्ञान में शून्यता या पूर्णभाव न रह जाय।

**शल्य चिकित्सा** – यह एक पृथक अंग ही नहीं अपितु एक पृथक सम्प्रदाय के रूप में प्रतिष्ठित रहा है। चरक संहिता में काय-चिकित्सा के आचार्यों ने उन्हें पूर्ण सम्मान दिया है तथा जहाँ कहीं भी आवश्यकता हुई तो शल्य-विशेषज्ञ से ही शल्य विषयक चिकित्सा करवाने का निर्देश दिया है। लेकिन शल्य विषयक एकदेशीय ज्ञान भी यत्र तत्र अवश्य मिलता है। चिकित्सा का 25वां द्विवर्णीय चिकित्सित अध्याय इसी एकदेशीय ज्ञान के लिए लिखा गया प्रतीत होता है।

**विष चिकित्सा**–चिकित्सा स्थान के 23वें अध्याय में विष-चिकित्सा का विस्तृत वर्णन किया गया है।

**भूत विद्या** – शारीर स्थान के आठवें अध्याय में तथा चिकित्सा स्थान के आठवें अध्याय में तथा चिकित्सा-स्थान के उन्माद चिकित्सित और अपस्मार चिकित्सित नामक नवें तथा दसवें अध्याय में भूत विद्या का वर्णन प्राप्त होता है।

**रसायन** – रोग निवारण की अपेक्षा रोग उत्पन्न ही नहीं हो इस उद्देश्य को चरक में अधिक महत्व दिया है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए चिकित्सा स्थान के प्रथम अध्याय को चार-पादों में विभक्त करके संक्षिप्त वाक्यों से जितना अधिक रसायन सम्बन्धी वर्णन कर सकते थे, उतना अधिक किया है।

---

1

**वाजीकरण** – रासायन के बाद दूसरे ही अध्याय में उसी तरह अध्यायों को चार पादों में विभक्त करके वाजीकरण का गहन विवेचन किया है।

इस तरह से चरक संहिता में अष्टांग का आवश्यक, उपयोगी और सामान्य ज्ञानपरक वर्णन किया गया है।

### **शरीर रचना और क्रिया सम्बन्धी विवेचन**

शरीर की रचना और रचना का ज्ञान एक काय चिकित्सक को भी होना आवश्यक है। इसीलिए अनेक स्थलों पर एतद्विषयक वर्णन किया गया है। यथा—‘पुरुष विचय’, शरीर विचय’ और ‘शरीर—संख्या’ नामक शरीर स्थान के अध्याय शरीर रचना सम्बन्धी ज्ञान की पूर्ति करते हैं तो सूत्र स्थान के विविधाशितपीतीय 28 और अर्थ दशमहामूलीय 30 आदि अध्यायों से क्रिया सम्बन्धी ज्ञान की पूर्ति होती है।

चरक ने सिद्धांतों के कथन के लिए किसी निश्चित ‘स्थान’ या ‘अध्याय’ को नहीं चुना है। अपितु जहां भी प्रसंगवश किसी सिद्धांत के कथन की आवश्यकता हुई वहीं उसे स्पष्टतः निर्दिष्ट कर दिया। चरक संहिता में अनेक सिद्धांतों का निरूपण हुआ है, जिनमें कुछ मुख्य सिद्धांत निम्नलिखित हैं—

**षड पदार्थ** – सामान्य, विशेष गुण, द्रव्य, कर्म, समवाय; **त्रिसूत्र आयुर्वेद**— हेतु, लिंग और औषध;

**त्रिदोष**—वात, पित्त, कफ; **चतुष्पाद सिद्धांत** – वैद्य, औषध, परिचारक, रोगी; **षोडश गुण का सिद्धि में**

**कारत्व** – चतुष्पाद में प्रत्येक के चार—चार गुण माने हैं तथा इनमें वैद्य का प्राधान्य स्वीकृत किया हैं।

क्षणिक विज्ञानवाद तथा स्वभावोपरमताद में बौद्धों द्वारा प्रतिपादित इन सिद्धांतों का वर्णन चरक द्वारा किया गया है। वाद मार्ग में 44 वाद मार्गों का निर्देश किया है। तंत्र युक्तियों में 36 तंत्र युक्तियां कही गई हैं। पंचमहाभूतों में पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश— ये पांच महाभूत हैं। इनसे संबंधित वर्णन अनेक स्थलों पर है।

**रस, गुण, वीर्य, विपाकादि** – द्रव्य के कार्मुकत्व को प्रतिपादित करते हुए इन सिद्धांतों का विवेचन किया है।

**रोगी परीक्षा** – त्रिविध परीक्षा, प्रकृति, विकृति, सार, संहनन, प्रमाण, सात्म्य, सत्व, आहार शक्ति, व्यायाम शक्ति, वय के द्वारा परीक्षा। रोग—परीक्षा में निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय, सम्प्राप्ति का वर्णन है। **षडुपक्रम** – लंघन, बृंहण, रुक्षण, स्नेहन, स्वेदन और स्तम्भन। इसके अतिरिक्त, सद्दत्त, तिस्त्रैषणा, दश प्राणायतन, इंद्रिय—वर्णन आदि अनेक ऐसे विषय हैं जो आयुर्वेदीय ज्ञान में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

चरक में सवप्रथम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए आरोग्य का होना आवश्यक माना है। अतः इस दृष्टिकोण से रोग का निराकरण करना एक श्रेष्ठ धर्म माना है। लेकिन इस क्रम में वैद्य को अर्थ या यश भी प्राप्त होता है। अतः इसे मात्र धन का ही साधन न मान लिया जाय, इस दृष्टिकोण से वैद्य के कर्तव्यों का निर्देश किया है

कि वह प्राणियों पर दया का विचार करते हुए रोगों के निराकरण के धर्म का निर्वाह करे। धन के लिए इस चिकित्सा को व्यवसाय के रूप में मान्यता नहीं दी।

चरक के काल में चिकित्सा धर्मार्थ थी, अर्थ और काम उसके उद्देश्य नहीं थे। चिकित्सा में औषध के साथ-साथ मन्त्रों का भी प्रयोग होता था। अतएव राजा के साथ रसविशारद वैद्य तथा मन्त्रविशारद पुरोहित के रहने का उपदेश है जो क्रमशः दोषज तथा आगन्तुज व्याधियों से उसकी रक्षा करते थे। चरकसंहिता में आयुर्वेद के लिए त्रिस्कन्ध विशेषण आया है तथा अन्य स्थलों में भी इसका प्रयोग हुआ है यथा मधुरस्कन्ध, अम्लस्कन्ध आदि। उड़ते हुए पक्षी की उपमा का सादृश्य अवलोकनीय है :-

*यथा हि शकुनिः सर्वा दिशोऽपि परियतन् स्वां छायां ना तिवर्तते।*

चरकसंहिता में 'उपनिषद्' शब्द का प्रयोग भी हुआ है - *विस्तरेण कल्पोपनिषदि व्याख्यास्यामः।* चरकसंहिता में योग के जो विषय मिलते हैं, वे भी वर्तमान योगदर्शन से कुछ भिन्न हैं यथा योग तथा मोक्ष की परिभाषा, योग की सिद्धियाँ आदि। सम्भवतः यह भी योग की प्राक्तन स्थिति का द्योतक है। चरकसंहिता में वातकलाकलीय में वात की ही महिमा का विशेष वर्णन है, पित्त और कफ का विशेष विवरण नहीं मिलता, उनके प्रकारों का भी उल्लेख नहीं किया गया। पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, इनका निरूपण प्राचीन काल में ही हो गया था। इनके कर्मों का भी स्पष्ट निर्धारण उपनिषत्काल के अन्त तक हो गया था। मन के विषय में पर्याप्त विचार हो चुका था। मन का लक्षण जो चरकसंहिता में दिया गया है वह उपनिषत्कालीन विचार पर ही आधारित है। उपनिषदों की ऐसी मान्यता थी कि आत्मा पुण्डरीकाकार हृदय में रहता है और हिता नामक सहस्रों नाड़ियाँ जो हृदय से निकलकर सम्पूर्ण शरीर में फैली रहती हैं, चेतना का संचार करती हैं। सुषुप्तिकाल में आत्मा और हृदय के दहर नामक आकाश में विश्राम करता है। चरकसंहिता में भी ऐसा ही विचार है। शरीर के ऐसे अवयव जिनमें विशेष रूप से प्राण की स्थिति मानी गई है 'प्राणायतन' कहलाते हैं। उपनिषदों में इस पर पर्याप्त विचार हुआ है। चरकसंहिता में दश प्राणायतन माने गये हैं। समस्त पदार्थों में जो सारभूत है उसे 'मधु' कहा गया है क्योंकि मधु पुष्पों के सार से बनता है। इस मधुविद्या का सुन्दर वर्णन बृहदारण्यक उपनिषद् में किया गया है। चरकसंहिता में धातुओं का सारभूत होने के कारण ओज को मधु माना गया है। चरकसंहिता में यह विचार आया है कि आन्तरिक्ष जल के द्वारा जांगम-स्थावर द्रव्यों में छह रसों की उत्पत्ति होती है। इसका मूल भी उपनिषदकालीन विचार है। चरकसंहिता के तिन्त्रैषणीय अध्याय में प्राणैषणा, धनैषणा, परलोकैषणा - इन तीन एषणाओं का वर्णन किया गया है। छान्दोग्य उपनिषद् में मनुष्य की परमायु 116 वर्ष कही गयी है - 24 वर्ष बाल्यावस्था, 44 वर्ष युवावस्था तथा 48 वृद्धावस्था। इसी के आठवें अध्याय के 9, 10, 11 खण्ड में प्रजापति के पास ब्रह्मविद्या की

प्राप्ति के लिए इन्द्र के 101 वर्षों तक निवास का उल्लेख है। इससे पता चलता है कि अपवादस्वरूप दैवीशक्ति-सम्पन्न व्यक्तियों की अधिकतम आयु इतनी होती होगी किन्तु सामान्यतः 100 वर्ष की आय थी जैसा कि 'जीवेम शरदः शतम्' इस मन्त्र से स्पष्ट होता है। उपनिषदों में भी यही है। चरकसंहिता में भी यही स्थिति है।

चरक ने शस्त्रकर्म षड्विध तथा उपक्रम 36 बतलाये हैं। संभव है, चरक ने सुश्रुत के अतिरिक्त किसी अन्य तन्त्र से इसका ग्रहण किया हो। व्रण में बाँधने के लिए पट्टी के सम्बन्ध में चरक ने वृक्ष, कम्बल तथा सूती वस्त्र का विधान किया है।

राजमाष चरक में है। इसका वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में है भी नहीं। चरक में फलवर्ग का आरम्भ मृद्धीका से हुआ है, खर्जूर का भी वर्णन है। श्रमहर गण में भी ऐसे ही फल हैं। चरक के स्वयं पश्चिमोत्तर प्रदेश में विशेष रहने के कारण इसका वर्णन स्वाभाविक है।

शाक या आहारोपयोगी वर्ग में गृज्जनक, पलाण्डु तथा लशुन का वर्णन चरक ने किया है तथा चिकित्सा में भी यत्र-तत्र इनका उपयोग है किन्तु धर्मशास्त्र में इनके सेवन का निषेध किया है। 'आसव' शब्द सामान्य मद्य के लिए प्रयुक्त होता था किन्तु 'अरिष्ट' शब्द औषधीय मद्य के लिए व्यवहृत हुआ। इसका प्रयोग चरक ने किया है। महाभाष्य में वार्तिककार के अनुसार वात के शमन तथा कोपन दोनों को 'वातिक' कहा है किन्तु चरक में 'वातिक' शब्द से 'वातवर्धक' द्रव्यों का ही ग्रहण होता है। इसके अतिरिक्त, महाभाष्य में निर्दिष्ट 'नवलोकदक पादरोगः' 'दधित्रपुसं प्रत्यक्षो ज्वरः' 'उत्कन्दको रोगः' आदि का चरक में उल्लेख नहीं है।

षडंग शरीर के अंगों के विभाजन को षडंगशरीर कहते हैं चरक के अनुसार शरीर के छह अंग (विभाग) हैं – 1. दो हाथ 2. दो पैर 3. शिर 4. ग्रीवा 5. मध्य शरीर (मध्य शरीर के अन्तर्गत उदर एवं वक्ष का समावेश होता है) इस तरह शरीर के छह अंग होते हैं।

शरीर के निम्न अवयव होते हैं :-

(1) त्वचा (2) अस्थि (3) इन्द्रिय (4) प्राणायतन (5) कोष्ठांग (6) हृदय (7) नौ छिद्र (8) स्नायु शिरा (9) कूर्च (10) कण्डरा (11) जाल (12) संघात (13) सीमंत (14) सेवनी इत्यादि।

**त्वचा** – चरक के अनुसार शरीर का आवरण त्वचा कहलाती है। यह संपूर्ण शरीर को ढकने वाली एवं स्पर्शेन्द्रिय का अधिष्ठानभूत अवयव है। यह स्वेदवाहक स्रोतों, लोमों के साथ लोमकुपों का आश्रय स्थान है। त्वचा की संख्या 6 होती है।

**उदकधरा** – चरक के अनुसार जो जल को धारण करती है, शरीर के काले, श्याम, गौर आदि वर्ण की प्रतीत इसी त्वचा पर होती है।

**रक्तधरा** – इसमें रक्त वाहिनियाँ संलग्न रहती है। अतः इसका वर्ण रक्त होता है।

तीसरी त्वचा श्वेता है जिसमें सिध्म, किलास रोग होता है। चौथी त्वचा को आचार्य चरक ने दद्रु, कुष्ठ का आश्रय माना है। पाँचवी त्वचा, अलजी और विद्रधि के स्थान मानते हैं। छठी त्वचा, जिसके कट जाने से मनुष्य के आंखों के सामने अन्धेरा छा जाता है और स्थूलमूल वाली फन्सियाँ का स्थान होता है।

**अस्थि परिचय** – चरक के अनुसार शरीर में दूसरी महत्वपूर्ण अवयव अस्थि है जो शरीर को आकार एवं स्थिरता प्रदान करता है। आचार्य चरक ने 360 मानी हैं जिनमें प्रमुख हैं – 1. दाँत, 2. दन्तों उखल, 3. नख, 4. हाथ पैर की अस्थियों की संख्या, 5. हाथ-पैर की शालाकास्थियाँ, 6. हाथ-पैर की आश्रय भूत, 7. एड़ी की अस्थियाँ, 8. पैर की गुल्फ की, 9. हाथ के माणिबंध में, 10. अरत्रि की अस्थियाँ, 11. जंघां अस्थि, 12. जान्च अस्थियाँ, 13. जानुकपाल, 14. ऊर्वस्थि, 15. बाहु की नलकास्थि, 16. असं की अस्थि, 17. असंफलक, 18. अक्षकास्थि, 19. जन्नु की अस्थि, 20. तालु की अस्थि, 21. श्रोणिफलक, 22. भगास्थि, 23. पीठास्थि, 24. गरदन की अस्थि, 25. छाती की अस्थि, 26. पर्शुकाएँ, 27. स्थालक, 28. हनुमूल, 29. स्थालक अर्षुदं, 30. हन्वस्थि, 31. हनुमूल को बाँधने वाली अस्थि, 32. गण्डकुटास्थि, 33. ललाट अस्थि, 34. शंखास्थियाँ, 35. कपाल अस्थि।

## अस्थिगणना

चरकसंहिता के अष्टांग संग्रह में कुल 360 (तीन सौ साठ अस्थियाँ), इन्द्रिय अधिष्ठान (1) त्वचा (2) जिभ्या (3) नासिका (घ्राणेन्द्रिय) (4) चक्षु (5) श्रोत्र कुल पाँच कर्मेन्द्रियाँ होता हैं –

**चरक अनुसार** षडंग शरीर की दृष्टि से चारो शाखाओ में – 128, मध्य शरीर में – 140, ग्रीवा के उपर – 92 अस्थियां होती हैं।

चरक के अनुसार आयुर्वेद मतानुसार पुरुषों में जितनी मूर्तिभाव विशेष (वस्तु) हैं उतने ही स्रोतस हैं। स्रोत जिन्हें आंखों से देख सकते हैं। जैसे जठर, आंत, धमनियां, शिराएं, लसिका एवं जनन तंत्र, मूत्र प्रणाली तथा सूक्ष्म स्रोत जैसे सूक्ष्म कोशिकाएं शामिल हैं। जिनकी गणना संभव नहीं है। सुविधा के लिए मुख्य स्रोतों की संख्या 13 मानी गई हैं यथा –

1. प्राणवह स्रोतस् 2. उदकवह स्रोतस् 3. अन्नवह स्रोतस् 4. रसवह स्रोतस् 5. भांसवह स्रोतस् 6. भेदोवह स्रोतस् 7. अस्थिवह स्रोतस् 8. भज्जावह स्रोतस् 9. शुक्रवह स्रोतस् 10. मूत्रवह स्रोतस् 11. पुरीषवह स्रोतस् 12. रक्तवह स्रोतस् 13. स्वेदवह स्रोतस्।

चरक के अनुसार सम्पूर्ण शरीर में गति करने वाले दोष, वात, पित्त, कफ ये सभी स्रोतों में चलते हैं। ये स्रोत जब तक प्राकृतिक रूप में रहते हैं। शरीर स्वस्थ रहता है। परन्तु स्रोतों की विकृति की स्थिति में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।

### प्राणवह स्रोत का स्थान विकृति का कारण लक्षण-स्थान :-

चरक संहिता में उल्लेख है कि वह स्रोत जो रक्तधारा में प्राणवायु (ऑक्सीजन) का वहन करता है प्राणवह स्रोत कहलाता है। प्राण वह स्रोत का मूल स्थान हृदय एवं महास्रोत हैं। इसमें विकृति का कारण दुर्बलता, वेगावरोध, रूक्ष (रूक्षता), पदार्थों का अधिक प्रयोग भूखे पेट व्यायाम करना है। इसके लक्षणों में हृदय की कमजोरी, श्वास लेने में कष्ट की अनुभूति या दर्द होना, श्वास की अनियमितता आदि है।

### उदक स्रोत का स्थान विकृति का कारण लक्षण

ये स्रोत सीरम और लसोका का वहन करते हैं इनका मूल स्थान तालु तथा क्लोम है। इसमें विकृति के कारण अधिक गर्मी व लू लगना, अपच, शराब का अधिक सेवन, अत्यन्त रूक्ष भोजन का अति सेवन अधिक प्यास सहन करना आदि है। इसे तालु, ओष्ठ, जिभ्या तथा कंठ का बार-बार सुखना आदि लक्षणों से पहचाना जा सकता है।

### अन्नवह स्रोत का स्थान, विकृति का कारण लक्षण :-

चरक के अनुसार मुख के द्वारा खाये गये अन्न को वहन करने वाला स्रोत अन्न वह स्रोतस कहलाता है। इसका मूल स्थान आमाशय है। इसमें असमय व अधिक मात्रा में भोजन करना। अपथ्य आहार का सेवन करना। जाठराग्नि का मंद होना इत्यादि मुख्य कारण है। इसके लक्षण भूख न लगना, भोजन में रुचि न होना, खाये हुए भोजन का वमन हो जाना आदि है।

## रसवह स्रोत का स्थान विकृति का कारण लक्षण

चरकसंहिता के अनुसार इसका स्थान आहार रस, लसिका आदि को वहन करने वाला स्रोतस, रसवह स्रोतस कहलाता है। हृदय से संबंधित दस वाहिनियाँ इसका मूल स्थान है। अत्यधिक चिन्ता, अत्यंत शीत व रूक्ष भोजन का सेवन करना से इसकी विकृति का कारण है। इसके लक्षणों में अरुचि या भोजन में रुचि का न होना, जी मितलाना या वमन जैसा लगना, शरीर में भारीपन, तन्द्रा (आलस्य) बेहोशी, रक्त की कमी, नपुंसकता आदि है।

## रक्तवह स्रोतस का स्थान विकृति का कारण एवं लक्षण

रक्त को वहन या हीमोग्लोबिन का वहन करने वाला स्रोत रक्त वह स्रोत कहलाता है यकृत प्लीहा इसका मूल स्थान है। इसकी विकृति का कारण अति तीक्ष्ण, अतिउष्ण व स्निग्ध भोजन का सेवन, धूप व आग का अति सेवन करना है। भयानक चर्म विकार (चर्म रोग), शरीर के छिद्रों या धमनी शिरा से रक्त स्राव, त्वचा में घाव उत्पन्न होना, गुदा एवं जननांगों में सुजन इसके लक्षण हैं।

## मांसवह स्रोतस का स्थान विकृति का कारण एवं लक्षण :-

मांस तंतुओं के तत्वों को वहन करने वाले स्रोत को मांस वह स्रोत कहा जाता है। कण्डराएं, चर्म, अस्थि बंधक, स्नायु आदि इसके मूल स्थान है। विकृति के कारण – भोजन के तुरंत बाद सो जाना, बार बार अधिक मात्रा में भोजन करना, गुरु एवं ठोस भोजन का अधिक मात्रा में सेवन करना है। लक्षणों में अर्बुद (पिण्ड), मांसार्बुद (मांस का पिण्ड या अर्श तालुशोध (सुजन) गलगण्ड (गले की थाईराईड ग्रंथि का बढ़ जाना) अन्य अर्बुद होना है।

## मेदोवह स्रोतस का स्थान विकृति का कारण एवं लक्षण –

वसा तत्वों को वहन करने वाले स्रोत को मेदोवह स्रोतस कहते हैं। इसका मूल स्थान गत् मेद, वृक्क है। इसकी विकृति का कारण दिन में सोना, व्यायाम न करना, अति स्निग्ध भोजन व मदिरा (शराब) का सेवन करना है। लक्षणों में मूत्र संबंधी विकार उत्पन्न होना, मूत्र का कष्ट के साथ निकलना, प्रमेह या मधुमेह रोग होना आदि है।

## अस्थिवह स्रोतस का स्थान, विकृति का कारण एवं लक्षण

अस्थि के पोषण करने वाले तत्वों को वहन करने वाले स्रोतस को अस्थि वह स्रोतस कहते हैं। कटि या कमर की अस्थियाँ इसके मूल स्थान हैं। इसमें अधिक व्यायाम करना, अस्थियों का आपस में रगड़ खाना, वातिक आहार का अधिक सेवन करना



विकृति के मुख्य कारण है। इसके लक्षणों में नाखूनों व दांतों का टूटना, हड्डियों में पीड़ा होना, बालों में रंग परिवर्तन होना आदि है।

#### **मज्जावह स्त्रोतस् स्थान विकृति का कारण एवं लक्षण**

चरक के अनुसार अस्थियों का संधियों संबंधी पौष्टिक तत्व या स्नेहांश को वहन करने वाले स्त्रोत को मज्जा वह स्त्रोतस् कहते हैं। अस्थियां व संधियां इसका मूल स्थान है। इसके विकृति के कारण, विरूद्धाहार अर्थात् मछली संग, दूध या अन्य गर्म पदार्थ का सेवन करना, कुचले जाने या दबाव आदि से मज्जा में चोट लगना आदि है। संधियों में पीड़ा, भ्रम (विभ्रमित होना), आंखों के आगे अंधेरा छा जाना, गंभीर विद्रधि (गहराई में मूल वाले घाव) आदि इसके लक्षण हैं।

#### **शुक्रवह स्त्रोतस् का स्थान, विकृति का कारण, लक्षण**

शुक्र व रज (आर्तव) तथा उनके लिए पोषकत्व को वहन करने वाली स्त्रोत को शुक्र वह स्त्रोत कहते हैं। अण्डाशय व डिम्बाशय इसके मूल स्थान है। इसमें विकृति का कारण असमय में सहवास करना, अप्राकृतिक ढंग से सहवास करना, सहवास का आधिक्य, सहवास की इच्छा को दबाना आदि है।

#### **मूत्रवह स्त्रोतस् का स्थान, विकृति का कारण एवं लक्षण**

मूत्र को वहन करने वाले स्त्रोतस् का मूत्र वह स्त्रोत कहते हैं। वृक्क एवं वस्ति इसका मूत्र स्थान है। विकृति का कारण, मूत्र के वेग को रोकना, मूत्र के वेग को रोकना और मूत्रवेग के समय में भोजन करना, पेय पदार्थों का सेवन करना, मूत्र वेग को रोक कर सहवास करना, ये उपर्युक्त कारणों से मूत्र वह स्त्रोतस् विकृत या अवरूद्ध होते हैं। लक्षणों में अधिक मात्रा में पेशाब (मूत्र) होना, मूत्र का बिलकुल न होना, बार बार मूत्र का त्याग करना, मूत्र का गाढ़ा होना आदि।

#### **पुरीष वह स्त्रोत का स्थान, विकृति का कारण एवं लक्षण**

पुरीष (भोजन का असारभाग जो मल द्वार से बाहर निकलता है) का वहन करने वाले स्त्रोतस् को पुरीष वह स्त्रोतस् कहते हैं। इसका मूल बृहद् आंत्र व मलाशय है। विकृति का कारण, पुरीष के वेग को रोकना, पहले किये गये भोजन के पचने से पूर्व दुबारा भोजन करना, जठराग्नि का मंद होना। इसके लक्षणों में मल का अधिक मात्रा में होना, कड़ा मल का निकलना।

#### **स्वेदवह स्त्रोतस् का स्थान, विकृति का कारण एवं लक्षण**

स्वेद (पसीना) का वहन वाले स्त्रोतस् स्वेदवह स्त्रोतस् कहलाते हैं। वसा तंतु व रोमकुप इसके मूल हैं। इसकी विकृति का कारण अधिक व्यायाम करना, तेज धूप में अधिक देर तक रहना, क्रोध, शोक व भय से ग्रस्त होना आदि हैं। अत्यधिक पसीना

का निकलना, पसीना का बिल्कुल ना निकलना, त्वचा में रूक्षता (रूखापन), रोमांच (रोमों का खड़ा हो जाना) आदि इसके प्रमुख लक्षण हैं।

#### **संधि परिचय लक्षण एवं परिभाषा :-**

अस्थि संयोग स्थान को संधि कहा जाता है। जिस स्थान पर दो अंगों का संधान होता है उस स्थान को संधि कहते हैं। जब दो या दो से अधिक अस्थियों के सिरे जब आपस में मिलते हैं उस संयोग को संधि कहते हैं। संधि संख्या के बारे में चरक के अनुसार संधियों की संख्या 290 हैं।

**चरक संहिता में मांसपेशीय परिचय :-** अस्थियों के संधि स्थान को दृढ़ करने एवं उसकी गति में सहायक होने से मांसपेशी का शरीर की दृष्टि से विशेष महत्व है। शरीर के प्रत्येक अंग एवं प्रत्यंगों में आच्छादित होकर संपूर्ण शरीर के अवयवों की रक्षा करती है। ये पेशीयां शरीर की सभी प्रकार की चेष्टाओं में सहायक है। इनका निर्माण शरीर के मांस धातु से होता है। सभी पेशीयों का मूल कार्य आकुंचन प्रसारण है।

**सिरा परिचय एवं सिरा की परिभाषा :-** वे सभी प्रणालियां जो शरीर के रक्त को हृदय की तरफ ले जाती हैं, उन्हें ही सिरा कहते हैं। ये संपूर्ण शरीर में फैली हुई अशुद्ध रक्त को वहन करने वाली होती हैं। जिनमें सरण होता है उन्हें सिरा कहा जाता है। सिराओं के आकुंचन और प्रसारण के द्वारा शरीर का उपस्नेह और परिपालन होता है। इसके अनेक शाखाएं होती हैं। इनका उद्गम स्थान नाभि है और वहीं से सारे शरीर में फैलती हैं। इसका वर्ण अरुण, नीला, शुक्ल, रक्त वर्ण का होता है तथा स्पंदनहीन होता है।

**धमनी परिचय :-** सामान्य रूप में धमनी शब्द से अभिप्राय संपूर्ण शरीर में में शुद्ध रक्त को बहाने वाली प्रणालियों से हैं। इन सभी का मूल स्थान हृदय है। हृदय धमनियों के द्वारा ही संपूर्ण शरीर में शुद्ध रक्त का संचार करता है। आचार्य चरक अनुसार धमान और धमन क्रिया द्वारा जो रक्त को हृदय से सर्वशरीरगत गति कराती हैं वह धमनी हैं।

**सारांश :-** आयुर्वेदीय चिकित्सा वंश परम्परा से चली आ रही थी जो गुप्तकाल से निरंतर थी व वर्तमान में भी एक प्रमुख चिकित्सा पद्धति के रूप में मान्य है। चरक के आयुर्वेदीय सिद्धान्तों में दैव व्यापाश्रय चिकित्सा का प्रचलन था।<sup>1</sup> ग्रहों का भी उल्लेख है जिससे पता चलता है कि यह ज्ञान प्रारम्भिक स्थिति में था। द्विद्वितीय अध्याय में रोगीपरीक्षा त्रिविध (दर्शन, स्पर्शन, प्रश्न) बतलाई गई है जिसका खण्डन सुश्रुत ने किया है। इसके अतिरिक्त, चरक ने शस्त्रकर्म षड्विध तथा उपक्रम छत्तीस बतलाये हैं। जबकि सुश्रुत में क्रमशः अष्टविध और साठ हैं। संभव है, चरक ने सुश्रुत के अतिरिक्त किसी अन्य तन्त्र से इसका

ग्रहण किया हो या वृद्धसुश्रुत में ऐसा ही विचार हो जिसे सुश्रुत ने आगे चलकर परिमार्जित किया। ग्रहण में बाँधने के लिए पट्टी के सम्बन्ध में चरक ने वृक्ष, कम्बल तथा सूती वस्त्र का विधान किया है।

**सन्दर्भ :-**

प्रसाद, राम, *विविध चिकित्सा प्रणालियाँ*  
राव, रामचंद्र, *आयुर्वेद और अन्य चिकित्सा प्रणालियाँ*  
कुरुप, दीप, *आयुर्वेद की सिद्धान्त*  
*चरक संहिता*, अध्याय  
*चरक संहिता*, विमानस्थान  
*सूश्रुत संहिता*  
*चरक संहिता*, सूत्र स्थान  
*चरकसंहिता*, शालाक्यतन्त्र  
*बृहदारण्यक उपनिषद*  
*छान्दोग्य उपनिषद*  
*चरक संहिता*, सूत्रस्थान  
*बृहदारण्यक उपनिषद*  
*चरकसंहिता* के तिस्रैषणीय *छान्दोग्य उपनिषद*  
*चरक संहिता*, विमानस्थान  
*चरक संहिता*, सूत्रस्थान  
*काश्यपसंहिता*, सूत्रस्थान  
*काश्यपसंहिता*, कल्पस्थान  
*काश्यपसंहिता*, खिलस्थान  
*पद्धतियाँ*,